Vol. 1, No. 1 (October 2012) P. 1-4 Sangeet Galaxy
ISSN : 2319-9695

देवदासी प्रथा : कल आज और कल

– डॉ0 अमित कुमार वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत भवन, विश्वभारती विश्वविद्यालय,
शान्तिनिकेतन, पं0 बंगाल
E-mail: kr.amitverma@gmail.com

15 अगस्त 2010, स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर महाराष्ट्र की देवदासियों ने मुम्बई में सार्वजनिक रूप से अपना अर्द्धनग्न प्रदर्शन किया, तो पूरी दुनिया का ध्यान मीडिया के माध्यम से इस ओर आकृष्ट था। इस घटना के पीछे कारण यह था कि सदियों से चली आ रही देवदासी प्रथा पर रोक लगा दिए जाने के बाद देवदासियां निराश्रित हो गई। सामाजिक अस्वीकृति व समाज में सम्मानजनक स्थान न मिल पाने के कारण अधिकांश देवदासियां वेश्यावृति के पेशे में आ गई। वर्ष 2007 में सुप्रीम कोर्ट को एक पत्र मिला जिसमे निराश्रित देवदासियों के बच्चो की दुर्दशा को बयान किया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने इसे जनहित याचिका मानकर इस पर कार्यवाही की। सुप्रीम कोर्ट ने इन बच्चो की स्थिति का संज्ञान लिया और आंध्र प्रदेश सरकार से पूछा कि उसने इन बच्चों के कल्याण के लिए क्या किया। मानवाधिकार आयोग के वर्ष 2004 की एक रिपोर्ट में इन देवदासियों के बारे में बताया गया है कि देवदासी प्रथा के रोक के बाद वे नज़दीक के इलाकों व शहरों में चलीं गई, जहाँ वे वेश्यावृत्ति के धंधे में लग गई। वर्ष 1990 की अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक 45.9% देवदासियां एक जिले में वेश्यावृत्ति करती है तथा शेष अन्य रोज़गारों जैसे खेती–बाड़ी या उद्योगो में लग गई।[1]

वर्ष 1982 में कर्नाटक सरकार ने और 1988 में आंध्रप्रदेश सरकार ने देवदासी प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया इसके बावजूद भी काफी समय तक लगभग कर्नाटक के 10 और आंध्रप्रदेश के 15 जिलों में यह प्रथा कायम रही। राष्ट्रीय महिला आयोग ने भी अपनी तरफ से पहल करने के लिए राज्य सरकारों से सूचना मांगी। इसमें से कई राज्यों ने कहा कि उनके यहाँ यह प्रथा समाप्त हो चुकी है, जैसे तमिलनाडु। उड़ीसा में बताया गया कि केवल पुरी मन्दिर में एक देवदासी है। लेकिन आंध्रप्रदेश ने 16,624 देवदासियों का आंकड़ा पेश किया। राष्ट्रीय महिला आयोग ने देवदासियों के जीवन स्तर में सुधार व आर्थिक सहायता देने के उद्देश्य से भत्तों का ऐलान किया। आयोग को 8,793 आवेदन मिले, जिसमें एक बड़ी संख्या में सही पात्रता रखने वाली देवदासियों को भत्ता भी दिया गया।[2]

यूरोपीय काल में वर्ष 1926 में मैसूर विधान सभा ने कानून पास कर राज्य में इस प्रथा पर रोक लगा दी थी। तीन वर्ष बाद मद्रास विधान सभा ने एक विधायक पारित कर मद्रास प्रेसिडेंसी में, देवदासी के

रूप में हिन्दू मन्दिरों में कुमारियों के समर्पण की प्रथा को समाप्त कर दिया। इसके पूर्व तृतीय मैसूर युद्ध (1790–1792) की समाप्ति पर टीपू सुल्तान ने भी लड़के–लड़कियों के मंदिर में दान दिए जाने पर रोक लगा दी थी और राज्य के पुर्नगठन के लिए उनका उपयोग खेती–सेना आदि में किया था।[3]

भारत में देवदासी प्रथा का आरम्भ कब से हुआ इस संबंध में कोई ऐतिहासिक दस्तावेज प्राप्त नहीं होते लेकिन देवदासी प्रथा का सर्वप्रथम उल्लेख पुराणों में मिलता है। पद्मपुराण में कुमारियों को दान रूप में देने की बात कही गई है। परम्परा के अनुसार देवदासी के रूप में देवता को उस कन्या को समर्पित किया जाता था, जो रजस्वला न हुई हो। इन देवदासियों को लौकिक विवाह की अनुमति नहीं थी। भारत के विभिन्न भागों में आज भी देवदासी प्रथा विद्यमान है। देवदासी को ''अखंड सौभाग्यवती'' अथवा ''नित्य सुमंगली'' कहा जाता है। दक्षिण भारत के मंदिरों में प्राचीन काल में 'देवदासी' समर्पण का एक भव्य उत्सव होता था।

मंदिर को समर्पित कुमारियों को मंदिर के देवता के साथ क्रतिम विवाह कराकर उन्हें आजीवन मंदिर की सेवा में रख लिया जाता था। इसके बदले उन्हें जीवन निर्वाह हेतु कुछ भत्ता भी मिलता था। ये कुमारियाँ विवाह नहीं कर सकती थी। कालांतर में इसमें विकृतियां आती गई और देवदासी प्रथा वेश्यावृत्ति में बदल गई। देवदासी को वेश्यावृत्ति से जो कुछ अर्थोपार्जन होता था, उसमें कुछ हिस्सा निकालकर बाकी सब मंदिर को अर्पित करना होता था।

महाकाव्यों में आए विभिन्न प्रसंगों से पता चलता है कि नौंवी दसवीं शताब्दी तक भारत के अलग–अलग भागों में देवदासी प्रथा अपनी जड़ें जमा चुकी थी। ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में अपनी भारत यात्रा के दौरान मुलतान के सूर्य मंदिर में देवदासियों का नृत्य देखा था। अलबरूनी ने अपने संस्मरणों में लिखा था कि 'मंदिरों में देवदासियां बाहर के लोगों से दैहिक संबंधों के बदले में धन लेती थीं।' अरब यात्री अबूजैद अलहसन, जो 867 ई में भारत आया था, ने लिखा है कि 'देवदासियाँ वेश्यावृत्ति से जो कुछ कमाती थीं वह मंदिर की व्यवस्था और रखरखाव के लिए पुजारियों द्वारा खर्च किया जाता था।' स्पष्ट है कि देवदासी प्रथा अत्यंत प्राचीन है, फिर भी ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी के बीच देवदासी प्रथा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। चोल राजा के बनवाए गए तंजौर के मंदिर में बारहवीं शताब्दीं में चार सौ देवदासियाँ थीं, जिन्हें बाद में चोल साम्राज्य के विभिन्न मंदिरों में 'देव सेवा' के लिए भेज दिया गया। इन चार सौ देवदासियों के नाम मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण किए गए। चौदहवीं शताब्दी आते–आते 'देवदासी प्रथा' ने दक्षिण भारतीय समाज में अपनी गहरी जड़ें जमा ली थीं। इस प्रथा को धर्माश्रय के साथ–साथ राजाश्रय भी मिला। तंजौर के मंदिर की चार सौ देवदासियों को नृत्य शिक्षा देने के लिए नृत्य गुरूओं की नियुक्ति की गई थी। देवदासियों और नृत्य शिक्षकों को पारिश्रमिक में धान (चावल) दिए जाने का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है।[4]

स्त्री अधिकार संगठन की सुपरिचित लेखिका अंजलि सिन्हा मानती है कि –''देवदासी प्रथा धर्मक्षेत्र की वेश्यावृत्ति है, जिसे धार्मिक स्वीकृति हासिल है।''[5] किन्तु इसके साथ–साथ देवदासी प्रथा का एक उज्जवल पक्ष यह भी है कि देवदासी प्रथा के कारण भारत के मंदिर संगीत की साधना के मुख्य केन्द्र थे। सदियों तक देवदासी प्रथा कायम रहीं। सदियों तक संगीत की साधना चलती रही और संगीत पुष्पों से देवों की आराधना होती रही। जिस कारण उस समय के संगीत में अध्यात्मिकता का प्रभाव अधिक था। संगीत में प्रयुक्त साहित्य भी उच्चकोटि का था। देवदासी प्रथा ने संगीत को मंदिरो से जोड़े रखा। यदि देवदासी प्रथा मंदिरो में विकसित न हुई होती शायद उस समय का संगीत भी अपने उच्चतम् अध्यात्मिक आदर्शो तक न पहुँच पाता। लेखक अनिल चावला के अनुसार –The devdasi developed and preserved the classical dances of India. Bharatnatyam is a modern incarnation of the *Sadir* dance performed by Devdasis of Tamilnadu. Oddisi was performed by Devdasis of temples in Orissa. Devdasis, as an community, developed distinct customs, practices and traditions that were best suited to enable them to live as artist without suppressing their physical and emotional needs.[6]

भारत के विभिन्न भागों में देवदासियों को अलग–अलग नामों पुकारा जाता है। उड़ीसा में इन्हें 'महारी' कहा गया, अर्थात वे महान नारियां जो अपनी लौकिक वासनाओं पर नियन्त्रण रख सकती है। इन देवदासियों के प्रश्रय में 'ओडिसी' नृत्य–कला फली फूली। ओडिसी नृत्यगुरू जो स्वयं 'महारी' परिवार से सम्बद्ध है, उनके अनुसार 'महारी' का अर्थ है – महारिपु–आरी जो पाँच महान शत्रुओं (पंचेन्द्रिय) पर विजय प्राप्त कर चुका है। कर्नाटक में देवदासियों को 'येलम्मा' के अनुयायी के रूप में जाना जाता है। महाराष्ट्र देवदासियाँ मुरली कहलाती हैं।

एक सामाजिक यथार्थ यह भी है कि देवदासियों के रूप में मंदिर को अपनी संतान समर्पित करने वाले अधिकांश परिवार दलित, निर्धन तथा अन्य निम्न कहीं जाने वाली जातियों से संबद्ध थे। अशिक्षा तथा निर्धनता इन परिवारों में इतनी थी कि वे अपनी सर्वाधिक प्रिय कन्या को मंदिर में दान करने को आस्था से जोड़कर देखते थे। उनका मानना था कि यदि वे कन्या को समर्पित नहीं करेंगे तो देवता कभी न कभी उसे अवश्य दण्ड देगा। इस प्रकार धर्माश्रय व राजश्रय, सामाजिक स्वीकृति तथा मोक्ष प्राप्त करने की लालसा ने सदियों तक देवदासी प्रथा को दक्षिण के मंदिरों में जीवित रखा।

निष्कर्षतः, हम अतीत को बदल नही सकते किन्तु वर्तमान को सुधार जरूर सकते है। आज के समय में जहाँ स्त्री विमर्श की चर्चा जोरों पर है, महिलाओं को समाज में उनके अधिकार दिलाने व उन्हें जागरूक करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग है, कई सरकारी व गैर सरकारी संस्थायें है, जो स्त्रियों के सामाजिक, शैक्षणिक आदि विकास के लिए प्रयासरत है, उसके बाद भी आज देवदासियां क्यों बची हुई है ?

उन्हें सामाजिक स्वीकृति क्यों नही प्राप्त है ? आखिर कब तक उन्हें मजूबरीवश जीवन यापन के लिए वैश्यावृत्ति को पेशे के रूप में अपनाना पड़ेगा। इस रात की सुबह कब होगी।

संदर्भ

1. प्रभात खबर समाचारपत्र, रांची से प्रकाशित, 26 अगस्त 2010, पृ0 8
2. वही
3. वही
4. संस्कृति, अंक 17, लेख़ : भारत में देवदासी प्रथा – डॉ0 गरिमा श्रीवास्तव, पृ0 40
5. प्रभात खबर समाचारपत्र, रांची से प्रकाशित, 20 अगस्त 2010, पृ0 8
6. Devdasis – sinners or sinned against by Anil Chawla, Page No. 6 (www.samarthbharat.com)

.

.